गीता का भगवान

– महावीर सिंह खर्ब, सोनीपत

"आपसे दो बार पहले भी बता चुका हूँ कि आपको कोई बीमारी नहीं है, आप अपनी चिन्ता छोड़ों।" डॉक्टर ने अपने मरीज से कहा –"लेकिन डॉक्टर साहब आपने मुझे यह बताया ही नहीं कि मैं अपनी चिन्ता कैसे छोडू?" मरीज के इस उत्तर की डॉक्टर को आशा न थी तथा इस चिन्ता व तनाव के पक्के इलाज का उसके पास जवाब भी न था। तथैव पृथ्वी का लगभग 80% भाग सागर के गर्भ में समाया है। मानव का अवचेतन मन भी लगभग 80% है तथा मनुष्य की बीमारियों का 80% भाग भी चिन्ता व तनाव-जनित है। यदि मनुष्य ने अपने मन-मस्तिष्क का कचरा शोधन करना है तो विचारधारा को सकारात्मक बनाना होगा। खुशनुमा विचार मन-मन्दिर में सजाने होंगे। अति सुन्दर विचारों का स्रोत भला सत्यं शिवं सुन्दरं परमात्मा से अन्य कौन हो सकता है? मानव को उससे जुड़ जाना होगा। उसके गुणों को याद करना होगा। यह याद की यात्रा ही योग है और योग शास्त्र है गीता।

1. गीता एक योग-शास्त्र है:- श्रीमद् भगवद् गीता एक योग शास्त्र है। इस रहस्य को गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में पुष्पिका में ब्रह्मविद्या विषयक योग-शास्त्र कहा गया है न कि अस्त्र-शस्त्र का शास्त्र। योग शब्द युज् धातु से बना है जिसका अर्थ है जुड़ना। अतः गीता शास्त्र हुआ आत्मा का परमात्मा से मेल कराने वाला आध्यात्मिक शास्त्र।

2. रचना का नाम:- किसी भी ग्रन्थ या पुस्तक का नाम उसके नायक, घटना अथवा विचार बिन्दू पर आधारित होता है यथा रामायण, पैराडाइज लॉस्ट व श्रीमद्भगवद् गीता। इस शास्त्र का नाम ही इसकी व्याख्या करता है। श्रीमद्भगवद् गीता अर्थात् स्वयं भगवान द्वारा प्रदत्त श्रीमत् जिसे श्रेष्ठ मत् भी कह सकते हैं। श्रीमत् होती है कल्याणकारी मत। इस प्रकार की शिवकारी मत केवल परमात्मा ही प्रदान कर सकते हैं जो सभी आत्माओं के रूहानी पिता हैं। प्रश्न उठता है कि क्या श्री कृष्ण को परमात्मा कहा जाए? क्या विश्व के लोग श्री कृष्ण को भगवान मानने को तैयार हैं?

3. परमात्मा का स्वरूप:- भगवान के अवतार के रूप में श्रीकृष्ण, श्री रामचन्द्र तथा परशुराम इत्यादि का नाम आता है। आजकल तो अनेक आचार्य लोग भी भगवान का टाइटल लगा लेते हैं। समस्त विश्व तो श्रीकृष्ण को भी भगवान नहीं मानता। विश्व के मुख्य धर्म भगवान को ज्योति-स्वरूप मानते हैं जो अजर, अमर, अजन्मा तथा दिव्य है। जबकि श्री कृष्ण का जन्म गर्भ से हुआ। वे एक समय-विशेष में युवा हुए व मृत्यु को प्राप्त हुए। भगवान तो अकाल-मूर्त हैं। वह एक परमप्रकाश है, आदित्य-वर्ण है परन्तु शीतलता चाँदनी सी है। वह ज्ञान-सूर्य अज्ञानता के अन्धकार को मिटाता है। उस मधु प्रकाश के साथ मधुर-मन की लवलीन अवस्था में निरन्तर तार जोड़े रखना ही अव्यभिचारी पूजा है। विदेही बन उसके साथ योग लगाना ही पूजा का श्रेष्ठ रूप है।

4. सन्तों के विचार:- महर्षि दयानन्द के मतानुसार श्रीकृष्ण देव पुरुष थे, भगवान नहीं। उनके अनुसार भगवान नश-नाड़ी के वश में नहीं। सन्त कबीर परमात्म-स्वरूप के विषय में कहते है–

लाली मेरे लाल की जिन देखूँ तिन लाल।
लाली देखन मैं गई तो मैं भी हो गई लाल।।

एक कदम आगे बढ़कर फिर कहते हैं कि भगवान वह है जिनके मुँह माथा नाहिं।

तुलसी अपने मानस में कुछ इस प्रकार कहते हैं–

बिनु पग चलइ सुनई बिनु काना,
कर बिनु करम करइ विधि नाना।

कुरान में परमात्मा को अल् मुबीन कहा है जिसका अर्थ है सत्यं, शिवं, सुन्दरम्। नमाज भी संस्कृत शब्द से बना है जिसे नमः □अ□न अर्थात् अजन्मे भगवान को नमस्कार।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्व मम देव देव।।

भगवान को माता व पिता कहने का अर्थ है कि वह न तो मेल है और न फिमेल। देव-देव अर्थात् वह (ब्रह्मा, विष्णु, शंकर) तीनों देवों का भी देवता है। वह सर्वोच्च सत्ता है। अन्यश्च श्री कृष्ण को तो विष्णु का अवतार कहा जाता है जिसे तीनों देवों का देव नहीं

कहा जा सकता।

5. निवास-स्थानः- गीता के अध्याय 8 के श्लोक 10, 11, 12, तथा 21 में भगवान के निवास स्थान को परमधाम बताया गया है। उसे सुर्य और तारागण से भी परे स्थित परमधाम का वासी कहा गया है। श्री कृष्ण तो इसी धरा के राजा हुए हैं। परमात्मा तो अभोक्ता है, कर्मातीत है। वह निराकारी, प्रकाश स्वरूप, निर्विकारी तथा निर् अहंकारी है। यह उस परमशक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर है कि वह कब, कहाँ और कैसे अपने मीठे भक्तों को अपना स्वरूप दर्शन कराता है।

6. पर्यायवाची नामः- गीता में गीता ज्ञान-दाता का नाम केवल कृष्ण ही नहीं आया है अपितु केशव, श्री भगवान, जगतपिता, महाकाल, प्रकाश स्वरूप, सच्चिदानन्दघन इत्यादि भी आया हे। भगवान के सभी नाम या तो गुणवाचक हैं या कर्त्तव्यवाचक हैं। जनता की प्रार्थना स्वीकार करने के कारण परमात्मा को जनार्दन, त्रिदेव के द्वारा कर्त्तव्य कराने वाला होने के कारण देव-देव (देवों का देव) कहा गया है। यदि कृष्ण नाम को व्यक्तिवाचक न मानकर गुणवाचक माना जाए तो भगवान आकर्षण स्वरूप भी हैं। इन नामों का समन्वय श्री कृष्ण कि बजाय भगवान के साथ अधिक बैठता है। गीता में वर्णित भगवान को प्रकाश स्वरूप व आदित्य वर्ण बतलाया गया है जो श्री कृष्ण के काले रूप का विपरित है। अतः श्याम वर्ण श्री कृष्ण को ज्योति स्वरूप भगवान कैसे माना जा सकता है।

7. व्यक्त व अव्यक्त प्रकृतिः- प्रत्येक पदार्थ की अपनी प्रकृति होती है। पानी का तासिर शीतल होता है। गर्म पानी को यदि प्राकृतिक अवस्था में कुछ समय छोड़ दिया जाए तो वह अपना शीतलता का गुण पुनः प्राप्त कर लेता है। गीता के अध्याय 7 के श्लोक 24 में भगवान कहते हैं कि बुद्धि हीन मनुष्य मेरी सर्वोत्तम, अविनाशी तथा सर्वोच्च प्रकृति को न जानते हुए मन इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्य की भांति जन्मा मान कर व्यक्ति भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं–

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तों ममाव्ययमनुत्तमम।। (7.24)

गीता के अध्याय 7 के श्लोक 25 में भी स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा अजर, अमर, अजन्मा और अविनाशी है– नाहं प्रकाशः सर्वस्य योग माया समावृतः।
मूढोअयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।। (7.25)

8. जन्म व अवतरणः श्री कृष्ण का जन्म कोख से हुआ है जबकि भगवान शिव तो स्वयंभू हैं जिन्हें शिवशम्भू भी कहा जाता है। वह सूर्य और तारागण के भी पार परमधाम से आकर सबसे मुनासिब आदम (Adam) के जिस्म में दाखिल होकर, उनकी जुबान को जरिया बनाकर तमाम इंसानी रूहों को खिलकत के (सृष्टि) इब्दिता (आदि), अस्ना (मध्य) तथा आखिरके रहस्यों का खुलासा करते हैं। इस प्रकार परमात्मा कोख से जन्म न लेकर किसी पावन परन्तु साधारण परकाय (शरीर) में प्रवेश करके अपनी सन्तान रूहों को इस सृष्टि-चक्र का दिव्य ज्ञान देते हैं (कुरान)। गीता के अध्याय 4 के श्लोक 9 में कहा गया है मेरे जन्म और कर्म अलौकिक हैं–

जन्म कर्म च मे दिव्यम् ।
और मैं धर्म की स्थापना करने के लिए अपना सृजन स्वयं करता हूँ।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। (4.7)
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।। (4.8)

अतः कहा जा सकता है कि श्री कृष्ण के जीवन में विकास है, ह्रास है और अन्ततः मृत्यु है जबकि भगवद् रूप में सत्यता है, नित्यता है, अपरिवर्तनशीलता है, एक रसता है। वह तो सुख-शान्ति की झिलमिल सी चन्द्र किरण है जो शीतलता प्रदान करती है।

9. समभाव दृष्टि या शत्रुताभावः– श्री कृष्ण जी अर्जुन को युद्ध करने के लिए तैयार करते हैं। साधन और साध्य का सम्बंध बीज और फल जैसा है। जब साधन, शत्रुता व युद्ध होगा तो परिणाम भी क्रोधाग्नि व हिंसा होगा। किन्तु गीता में अनेकानेक श्लोक काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार मिटाने के लिए कहे गये है। यह भी उपदेश दिया गया है कि सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान मानकर तू विकारों के साथ युद्ध के लिए तैयार हो जा। ऐसा करने पर तुम्हें पाप नहीं लगेगा–

सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जया जयौ।
ततो युद्धााय युज्यस्व नैंव पापमवाप्सयसि। (2.38)
समभाव दृष्टि बनाने वाले श्रीकृष्ण नहीं अपितु जगतपिता परमात्मा ही हो सकते हैं–
विषय विनिर्वन्तु निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज रसो अप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। (2.59)

अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत नहीं होती। इस स्थित प्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत हो जाती है।

ये वाक्य तो पुरुष में लेषमात्र विकार भी समाप्त करना चाहते हैं। यदि श्री कृष्ण भगवान था तो उसके दर्शन तो सभी योद्धाओं ने किये थे, परन्तु वे क्या आसक्ति-निवृत हुए?

क्या ये वाक्य युद्ध में धकेलने वाले श्रीकृष्ण के हैं या पतित-पावन शिव भगवान के, यह विवेक से सोचने की आवश्यकता है।

10. गीता का नायक राग-द्वेष, क्रोध व मोह को मिटाता है:– श्रीकृष्ण को तो युद्ध कराने वाला माना गया है जबकि गीता का नायक तो किसी प्रकार के विकारी विषयों का चिन्तन करने से भी वर्जित करता है। गीता के अध्याय 2 के श्लोक 60 से 65 तक बड़े वैज्ञानिक ढ़ग से ये विचार प्रस्तुत किये गये हैं। –
रागद्वेष वियुक्तैस्तु विषयानिद्रियैश्यचरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति। (2.64)
प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योप जायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। (2.65)
यह शिवकारी परमात्मा ही है जो मानव को आनन्द चित्त व स्थिर-प्रज्ञ बनाता है।

11. क्या सोलह कला सम्पूर्ण श्रीकृष्ण युद्ध करायेगा:– सोलह कला सम्पूर्ण का अर्थ है सोलह आने शुद्ध। शत्-प्रतिशत शुद्धता का अर्थ देव-पुरुष से है। महर्षि दयानन्द ने भी श्री कृष्ण को देव-पुरुष ही माना है। यदि देवपुरुष श्री कृष्ण टीचर के रुप में अपने शिष्य अर्जुन को स्थित-प्रज्ञ बना दे व उसे कर्मो के गुप्त-रहस्यों का ज्ञान करा दे तो क्या ऐसा टीचर व शिष्य युद्ध जैसे दुष्परिणामी मार्ग को अंगीकार कर सकते हैं? इस युद्ध के विषय पर प्रख्यात् समालोचक अभिनव गुप्त कहते हैं कि अविद्या के अन्धकार तथा मन के अशुद्ध संकल्पों को मारना ही इस युद्ध का लक्ष्य है। गीता को कविता के रुप में लिखा गया है तथा किसी भी कविता का प्रतीकात्मक अर्थ उसके शाब्दिक अर्थ से भिन्न होता है। अतः गीता का प्रतिपाद्य विषय है आत्मा व परमात्मा का दर्शन जो इन रहस्यों को खोलकर आत्मा-दर्शन व सृष्टि चक्र के गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट रुपेण हमारे सामने रख देती है। आत्म-दर्शन का ही अर्थ है स्व-दर्शन, न कि सुदर्शन-चक्र हथियार। क्या यह आत्म-ज्ञान क्रोधाग्नि व युद्धाग्नि में झोंकने वाला हो सकता है क्योंकि क्रोध की अवस्था में तो मनुष्य उबलते पानी समान बन जाता है और जिस प्रकार वह उबलते पानी में अपना चेहरा नहीं देख सकता, उसी प्रकार क्रोध की अवस्था में आत्म-स्वरूप नहीं देख सकता। वास्तव में गीता-ज्ञान तो अध्यात्म-ज्ञान है जो आत्मा की थकान व भटकन दूर करके शीतलता प्रदान करता है।

12. गीता-सन्देश:– गीता का एक नायक गुप्त है और गुह्य-ज्ञान दे रहा है। दूसरा नायक है शरीरधारी जो अर्जुन को युद्ध में प्रवृत होने का सन्देश देता है। क्या गीता-ज्ञान भौतिक है या आध्यात्मिक, यह आलोचना का विषय है। शरीर तो कर्म करने का साधन मात्र है क्योंकि कहा भी है शरीरमाद्यं खलु एष धर्म साधनम्। यह आत्मा किसी काल में न तो जन्म लेती है और न मरती है। इसे शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती और वायु सुखा नहीं सकती। गीता का दूसरा अध्याय तो अध्यात्म से ओत-प्रोत है। आध्यात्मिक शिक्षा का ज्ञान-दाता हमारे अन्दर छिपी आध्यात्मिकता को उकेरकर हमें स्व-तुल्य हीरे जैसा बनाता है। वह विधाता स्वयं भी विदेही है और अपनी सन्तानों को उनकी मूलभूत अशरीरी अवस्था का भान कराकर गीता का सार्वभौमिक पाठ सिखाता है। जिस प्रकार मानव अपने पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्र धारण करता है वैसे ही आत्मा भी पुराने शरीर को छोड़ नया शरीर रूपी वस्त्र धारण कर लेती है–
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोअपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। (2.22)

तथा जब मनुष्य की बुद्धि परमात्मा में स्थिर ठहर जायेगी तब मनुष्य योग को प्राप्त हो जाएगा और इस प्रकार परमात्मा से निरन्तर नित्य संयोग के होने पर नर को नारायण का पद प्राप्त हो जाएगा।

श्रुति विप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधाव चला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।

तथा जो भी कर्म किया जाए, उसके पूर्ण होने अथवा न होने में तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम ही समत्व भाव है। अतः आसक्ति त्यागकर सिद्धि और असिद्धि में समानबुद्धि वाला होकर, योग में स्थिर होकर कर्मों को करना ही समत्व योग कहलाता है। यही निष्काम भाव, मुक्ति व जीवन-मुक्ति का रास्ता खोलता है। इस विषय पर आदि शंकराचार्य कहते हैं– "आसक्ति और वासना के क्षय का नाम ही मोक्ष है। जीवन मुक्ति इसी का रूप है।" गीता में तो स्थान-स्थान पर विकारों को त्यागने का संदेश मिलता है तथा उनका वैज्ञानिक-विधि से किस तरह व्यापक रूप होता है, निम्न श्लोक में बताया गया है–

क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।। (2.63)

गीता-ज्ञान अध्यात्म के चरमोत्कर्ष को छू लेता है जब इच्छामात्रम् अविद्या का सन्देश दिया जाता है।

13. साधन व साध्य का सम्बन्धः– महात्मा गांधी जी ने कहा कि यदि साधन दोषपूर्ण होता है तो साध्य भी दोषरहित नहीं हो सकता। जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही काटा जाता है। क्रिया तथा प्रतिक्रिया का वैज्ञानिक नियम भी यही है। सम्राट अशोक ने युद्ध में विजय प्राप्त की। युद्ध में अनेको जानें गई लेकिन सम्राट को शान्ति की प्राप्ति हुई धर्म में समर्पित होकर। भगवान अपनी सन्तानों के आत्मा रूपी कपड़ों को धोकर चमकता सितारा बनाता है। अन्धेरे से प्रकाश की ओर ले जानेवाला यह ज्ञान-सूर्य शिव है जिसे हम अपना खुदा-दोस्त भी कहते हैं न कि श्री कृष्ण। फिर भी गीता में यदि श्री कृष्ण को नायक मान लिया जाए तो वह अस्त्र-शस्त्र की विद्या क्यों नहीं सिखलाता है यदि यह खूनी युद्ध है तो ? किन्तु गीता में तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आलस्य इत्यादि विकारों रूपी शत्रुओं से युद्ध -हेतु योग-पद्धति बताते हैं– "मुक्ति र्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः" मुक्ति का अर्थ है इस भौतिक जगत् की कलुषित चेतना से मुक्त होना और शुद्ध चेतना में स्थित होना। न्यारे व प्यारे रहना। कलुषित चेतना से मुक्त होकर कौन अर्जुन किसके साथ युद्ध करेगा ? क्या वह हिंसात्मक युद्ध करेगा अथवा अपने अन्तःकरण की बुराइयों के साथ युद्ध करेगा– यह चिन्तन का, विवेक का विषय है।

14. केवल भगवान ही त्रिकालदर्शी हैः– अश्वमेध पर्व में जब अर्जुन पुनः गीता सुनाने के लिए श्री कृष्ण जी से आग्रह करते हैं तो श्री कृष्ण उस समय गीता-ज्ञान सुनाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। जरा सोचिए कि क्या त्रिकालदर्शी भगवान असमर्थ हो सकता है ? एक देहधारी मानव असमर्थ हो सकता है परन्तु परमात्मा कदापि नहीं। भक्तजन भी कृष्ण का गायन सर्वगुण सम्पन्न, सोलह कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी और अहिंसक मर्यादा पुरुषोत्तम देवता कहकर करते हैं, जबकि परमात्मा तो मनुष्य सृष्टि के बीज रूप, निराकार, पारलौकिक परमपिता परमात्मा, त्रिमूर्ति, त्रिनेत्री, त्रिकालदर्शी और त्रिलोकीनाथ हैं।

15. समस्त विश्व में परमात्मा के स्मारकः– भारत में भगवान शिव की प्रतिमा ज्योतिर्लिंगम के रूप में लाखों मन्दिरों में पाई जाती हैं। काश्मीर में अमरनाथ, कन्याकुमारी में रामेश्वरम्, सोमनाथ तथा शिवकाशी के विश्वनाथ मन्दिर इत्यादि शिव के ही हैं। इटली के इसाई और रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय द्वारा इस आकार के पत्थर को अपने ढ़ंग से सम्मान दिया जाता है तथा शिव को जेहोवाह (Jehovah) नाम से याद किया जाता है। इस्राईल में यहूदी लोग शपथ को सच्चा प्रमाणित करने के लिए शिवलिंग के आकार वाला पत्थर हाथ में लेते हैं। भारत में शाक्त, गणपात्य, राम उपासक व कृष्ण उपासक भी शिव को मानते हैं। सोमनाथ में महमूद गजनबी के लूटने से पहले हीरे का शिवलिंग था जो चमकता रहता था और परमात्मा के ज्योतिस्वरूप को सिद्ध करता था। शिवलिंग पर त्रिपुण्डी भी बनाई जाती है जो भगवान शिव के त्रिमूर्ति, त्रिनेत्री, त्रिकाल दर्शी और त्रिलोकीनाथ होने का प्रतीक है। एक मान्यता के अनुसार वृन्दावन में गोपेश्वर के स्थान पर श्री कष्ण ने तथा रामेश्वर में श्री राम ने शिव की पूजा की थी जिससे सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण, श्री राम तथा अन्य देवताओं के भी भगवान, शिव ही हैं।

मक्का में खाना-ए-काबा में शिवलिंग के समान ही संग-ए-असवद की प्रतिमा को मुसलमान पवित्र (मुकद्दस) मानते हैं। जापानी लोग भी इसी प्रकार की प्रतिमा से ध्यान लगाते हैं। जिसे वे अपनी भाषा में चिन्कानसेकी (शान्तिदाता) कहते हैं । योग का प्राचीन नाम ध्यान ही था जो चीन में भी भारत से गया है। वहाँ इसे चांग कहते है जो उच्चारण भिन्नता के कारण परिवर्तित हुआ है।

क्राइस्ट, गुरुनानक आदि ने भी परमात्मा को निराकार तथा ज्योतिस्वरूप कहा है।

16. भगवान द्वापर में नहीं आतेः– क्रमांक आठ में गीता के अध्याय चार के श्लोक न. 7 व 8 दिये गये हैं। उसके अनुसार धर्म की अत्यंत ग्लानि के समय प्रत्येक युग में साधु-लोगों को बचाने हेतु व धर्म-स्थापना हेतु भगवान अपना सृजन कर अवतरण लेता है। श्लोको से एक बात तो यह सिद्ध होती है, परमात्मा बेहद धर्म ग्लानि के समय आते हैं। किन्तु यदि परमात्मा द्वापर युग में आये तो उसके बाद तो और भी खराब समय कलियुग के रूप में आ गया जबकि सतयुग आना चाहिये था। दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि भगवान इस जगत के कण-कण में विद्यमान नहीं है, यदि ऐसा है तो परमात्मा को अवतार लेने की क्या आवश्यकता थी। तीसरी बात युगे-युगे शब्दों का प्रयोग बताता है कि परमात्मा प्रत्येक युग में एक बार अवश्य आया है तथैव चार अवतार होने चाहियें थे न कि चौबीस अवतार जैसे मान्यता है। यदि भगवान ही युग में अवतार लेते तो सृष्टि की दशा हर युग में पहले युग से गिरती न जाती।

17. कुरुक्षेत्रः– युद्धक्षेत्र या धर्मक्षेत्र– महाभरत के युद्ध के अनुसार अकेले भीष्म पितामह ने अपने सेनापतित्व के 10 दिनों में ही पाण्डव-दल के एक अरब लोगों का हनन कर डाला था–

जघान यधि योद्धानाम् अबुर्दम (अरब) दशभि दिनैः

शेष योद्धाओं ने भी तो एक दूसरे के योद्धाओं को मारा था। इस तरह से महाभारत-काल की जनसंख्या क्या होगी ? आज समस्त हरियाणा की आबादी एक करोड़ से कुछ ऊपर है और सारे भारत की जनसंख्या भी एक अरब से कुछ ऊपर है। कुरुक्षेत्र तो हरियाणा का सबसे कम जनसंख्या वाला जिला है। क्या युद्ध के समय वहाँ पर करोड़ों लोग समा गये होंगे ? ये कुछ मूल-भूत तथ्य किसी अन्य समय व स्थान की ओर संकेत करती हैं। गुरु नानक की वाणी के अनुसार–

शरीर को मानों खेत,
शुभ कर्मों के बोओं बीज,
ईश्वर नाम से करो सिंचाई,
हृदय को बनाओं किसान
तब तेरे हृदय में ईश्वर अंकुरित होगा
और फिर तुझे निर्वाण पद की फसल मिलेगी।

कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र भी कहा गया है। इस विषय पर वामन-पुराण में बड़ी विचित्र-सी कथा लिखी है। उसमें कहा गया है कि राजा कुरु यहाँ पर धर्म की कृषि करने के लिए आये थे। उन्होंने भगवान शिव से बैल और यमराज से उसका वाहन महिष (भैंसा) लेकर खेती के लिए भूमि को जोतना शुरु कर दिया। तब वहाँ इन्द्र देव जी आये और पूछा कि राजन! आप यहाँ क्या कर रहे हो ? राजा कुरु ने उत्तर दिया कि मैं यहाँ योग, ब्रह्मचर्य एवं सत्य इत्यादि की खेती करना चाहता हूँ। इन्द्र देवता के जाने के बाद विष्णु जी ने कुरु से यही प्रश्न किया। विष्णु जी ने उसके हाथ-पैर के हजारों टुकड़े करके इस क्षेत्र में बो दिए और राजा को यह वर दे दिया गया था कि यह क्षेत्र "कुरु" के नाम से प्रसिद्ध होगा और धर्मक्षेत्र कहलाएगा।

उपरोक्त दोनों उदाहरणों का एक प्रतीकात्मक अर्थ निकलता है। गीता का प्रथम श्लोक समस्त कर्म योग व धर्मयोग का आधार बन जाता है यदि गुरुनानक जी तथा विष्णु जी का भावार्थ इस श्लोक से लिया जाता है–

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।। (1.1)

धर्म के विषेय में कहा भी गया है कि य धारयति स धर्मः।

18. गीता-ज्ञान लुप्त-प्राय अलौकिक-ज्ञानः– गीता-ज्ञान अलौकिक है। तथैव गीता-ज्ञान-दाता भी अलौकिक होना चाहिए तथा इस ज्ञान का श्रवण, मनन-चिन्तन व धारण करने वाला भी दिव्यता को प्राप्त करने वाला होना चाहिए। यदि श्रीकृष्ण को गीता ज्ञान-दाता मान भी लिया जाए तो प्रश्न आता है कि क्या गीता-ज्ञान युद्ध स्थल में दिया ? क्या युद्ध के कोलाहल में, जहाँ करोड़ों योद्धा थे गीता अर्जुन को सुनाई दी होगी ? क्या करोड़ो योद्धओं के मध्य में अर्जुन अपने मित्र-संबन्धियों को देख सका होगा ? क्या अठारह अध्याय जितनी लम्बी गीता का ज्ञान सुनने के लिए कौरवो ने अर्जुन को युद्ध में समय दिया होगा ? वह भी उन कौरवों ने जिन्होंने छल-कपट से उसके पुत्र अभिमन्यु का वध कर दिया हो ? धर्म की अत्यन्त ग्लानि के समय क्या गीता केवल

अर्जुन, धृतराष्ट्र और संजय को ही सुनाई गयी ? क्या गीता का पाठ मनुष्य को हिंसक बना देता है और क्या यह ज्ञान प्राप्त कर अर्जुन हिंसक हो गया होगा ? धारणा यह है कि गीता सुनने से तो शान्त रस व आनन्द रस पैदा होता है न कि वीर रस। अतः निष्कर्ष तो यही निकाला जा सकता है कि यह ज्ञान, शान्ति व सुख के सागर, ज्ञान के सागर, श्रीमत् दाता, काल के पंजे से छुड़ाने वाले, दिव्य-दृष्टि विधाता, सद्गति-दाता, अकालमूर्त्त सत्-चित-आनन्द ने दिया है न कि श्री कृष्ण ने।

हमारे शास्त्रों के अनुसार तो स्थापना व विनाश के कार्य क्रमशः ब्रह्मा व शंकर देवताओं के हैं तो फिर गीता का श्लोक अध्याय 4 के 7, 8 व 9 को बोलने वाला कौन हो सकता है जिसमे लिखा है– मैं अधर्म का विनाश और धर्म की स्थापना करता हूँ। मैं प्रकाश-स्वरूप हूँ और मेरा जन्म-कर्म अलौकिक है। श्री कृष्ण को तो विष्णु का अवतार माना जाता रहा है। फिर स्थापना व विनाश भी करने वाला श्री कृष्ण नहीं हो सकता। उपरोक्त श्लोक का कार्य तो तीनों देवों का देव ही कर सकता है। श्रीकृष्ण तो देव है और देवों के लिए तो अहिंसा परमोधर्म होता है। कोई भी देव अहिंसा, प्रेरक व सहनशीलता का पाठ पढ़ाता है तो क्या श्री कृष्ण ने अर्जुन को हिंसा का पाठ पढ़ाया होगा ?

यदि भगवान को सारथी बनाया तो हमारी यह धारणा है कि मन रूपी घोड़े की लगाम अर्जुन ने भगवान के हवाले कर स्वयं को निश्चय-बुद्धि बनाया। यहाँ पर रथ व रथवान का गूढ़ आध्यात्मिक अर्थ है। यदि यह मान भी लें कि श्री कृष्ण गीता में वर्णित युद्ध के महानायक भी रहे तो यह युद्ध द्वापर युग वाले श्री कृष्ण का है। ज्ञान देने, विनाश करने और धर्म-स्थापना करने के बाद भी कलियुग क्यों आ गया ? धर्म व देश का अभ्युत्थान क्यों नहीं हुआ ? अतः हम कह सकते हैं कि गीता का ज्ञान देने वाला भगवान तो है, परन्तु वह द्वापर युग का न होकर कलियुग के अन्तिम समय पर आने वाला भगवान है। वह भगवान नित्य है, शाश्वत है, अनश्वर है, दिव्य प्रकाश स्वरूप है, अजन्मा व अजर-अमर है, वह एक साधारण मानव-तन का आश्रय लेकर गीता-ज्ञान देता है जिसे बिरले भक्त ही पहचान सकते हैं।

19. गीता का बढ़ता स्वरूपः– गीता के प्रसिद्ध समालोचक मधुसूदन सरस्वती व चिन्तामणि वैद्य इत्यादि लेखकों का मानना है कि गीता एक स्वतन्त्र रचना है जिसका महाभारत के लेखक ने बड़े चातुर्य से महाभारत में विलय कर दिया है। संस्कृत साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते हमने पढ़ा है कि महाभारत का प्रथम नाम "जय" था जो व्यास जी की रचना थी। उस समय इसमें 8800 श्लोक थे किन्तु तत्पश्चात् वैशम्पायन ने इसको "भारत-संहिता" नाम देकर तथा उसके रूप को बढ़ाकर इसके श्लोकों की संख्या 24000 कर दी। तत्पश्चात् सौति उग्रश्रवा ने इसका विस्तार कर 97000 श्लोकों का विशाल ग्रन्थ बना दिया जिसका नाम "महाभारत" रखा गया। प्रक्षेप की वजह से आज तो महाभारत में एक लाख से भी अधिक श्लोक पाये जाते हैं। उपरोक्त तथ्यों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत ग्रन्थ कम से कम चार भिन्न लेखकों की रचना है और यह तथ्य समान रूपेण पूर्व व पश्चिम के आलोचकों ने स्वीकार किया है। गीता को ही शिरोमणि शास्त्र माना जाता है महाभारत को नहीं। यदि गीता में श्री कृष्ण उवाच की बजाय श्री भगवान उवाच अथवा शिव भगवान उवाच ही होता तो गीता अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-शास्त्र होता।

20. अन्ततः- निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गीता, श्रीमद्भगवद्-गीता है न कि श्री कृष्ण गीता। गीता-ज्ञान विकारों के साथ युद्ध करना सीखाता है। कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में कोई स्त्री तो नहीं थी फिर भी काम और क्रोध इत्यादि के निवारण का उपदेश क्यों दिया गया है ? वस्तुत यह ज्ञान नर के विकारों के साथ युद्ध करने की कला की शिक्षा देता है। गीता एक योग-शास्त्र है तथा गीता का भगवान मनुष्यों को अध्यात्म-ज्ञान से लाभान्वित कर आत्मा को उसके चौरासी जन्मों का स्वदर्शन कराता है। परमात्मा का सम्यक रूप तो प्रकाशस्वरूप है जिसका दर्शन, मनन व कथन अनेक सन्तों ने अपनी वाणी में किया है। गीता में वर्णित इसके नायक का दिव्य जन्म, ग्रन्थ का सन्देश,युद्ध -स्थल का विशाल-क्षेत्र, गीता के भगवान का सर्वोच्चधाम, उनके कर्मातीत व अभोक्ता होने के गुण श्रीकृष्ण को नायक मानने में सन्देह जताते हैं। दूसरी ओर अठारहवीं सदी के थियोसोफिकल-सोसाईटी के प्रख्यात् प्रवक्ता टी. सुब्बा रो अर्जुन के प्रर्यायवाची नाम "नर" की चर्चा भी करते हैं जो किसी व्यक्ति अर्जुन की ओर नहीं बल्कि मनुष्य जाति की ओर संकेत करता है। अतः योग में स्थित अर्जुन (जो गुणों का अर्जन करता है) अपने मन रूपी घोड़े की लगामों को आदित्य-वर्ण रूपी भगवान सारथी के कर में पकड़ा कर, स्थित-प्रज्ञ बन विषय-विकारों की वैतरणी को पार-कर नर से नारायण का पद प्राप्त करता है।